



**THE TIMES OF INDIA**

*Date: 31-05-17*

## India's ban mania:

### *Cattle market prohibition illustrates how we suffer from too many restrictions*



It is commonplace to say that India suffers from poor governance. Less commonplace is to query why this should be the case. There can be worse answers than pointing at how too many laws pose too heavy a burden on people. Forcing people to live at the margins of the law is bad for governance, for a number of reasons. One, it promotes general disrespect for the law. Two, ambiguously worded laws and red tape make it easier for authorities to harass people, incentivising corruption. Three, heavy-handed laws promote the growth of vigilantes and therefore general lawlessness in society. When it comes to laws, rules and legislation there can certainly be too much of a good thing; this was Prime Minister Narendra Modi's insight earlier on when he raised the slogan of "minimum government, maximum governance". Unfortunately, this is not a premise that has been realised during the years NDA has been in office – although, to be fair, opposition-ruled states or even courts have been as quick to breach this principle as BJP has (witness draconian prohibition laws introduced by the Bihar government, or the Supreme Court ban on liquor within 500 metres of highways).

We can take the situation of farmers as an illustrative example. There is no political party that doesn't cry itself hoarse about the plight of farmers, or shout from the rooftops what it is doing for their benefit. Yet, in perhaps only a step short of Soviet-style collectivisation, India places severe restrictions on farmers trading in what they produce or own. Thus, farmers can only sell their produce at licensed markets in most states, which allows middlemen to run away with most agricultural profits. If this quixotic rule originated from the left of the ideological spectrum, now the right has come up with its own quixotic rule to match: a ban on cattle markets where animals might be sold for slaughter. To circumvent this being a state matter the ban has speciously been placed under a central law, the Prevention of Cruelty to Animals Act. If, among other things, the new law means that a large part of India's \$13 billion-a-year leather industry migrates to Pakistan and Bangladesh, the environment ministry can't be less bothered. India has, after all, always suffered from a surfeit of ideology and a lack of pragmatism – even if this gives rise to poor governance and underdevelopment.

---

**THE ECONOMIC TIMES**

*Date: 31-05-17*

## For a Trumpian rethink on global terror

Looking back on his maiden overseas trip, US President Donald Trump may consider the Saudi Arabia-Israel leg to have been the most successful. But if Trump is serious about making his country secure from terror, he does himself serious disservice by identifying Iran as the fountainhead and sponsor of terror.



Instead of threatening to damage the Iran nuclear deal, the US needs to engage Iran and lift the sanctions that remain on banking ties, even after the UN sanctions have been lifted. Trump would do well to recognise that the Islamic State that he has sworn to defeat depends, ultimately, on not so much material means and territory as a pernicious ideology that claims to be based on Wahhabi Islam, whose centre is Saudi Arabia. President Trump would do well to confront his Saudi allies on its continued funding of Wahhabi Islam around the world, including in Europe. PM Narendra Modi would, naturally, broach the subject of terror during his interaction with German Chancellor Angela Merkel and French President Emmanuel Macron this week. He would do well to coordinate

opinion on the need to stem the spread of Jihadi ideology and, to this end, for the world community to impress on Saudi Arabia its expectation of cooperation on this count. The forthcoming G20 summit would be another occasion for world leaders to rework their anti-terror strategy from merely focusing on physical containment to combating the underlying ideology and the regional instability that makes it conducive to find ready recruits. The television and radio channels in the region that fan sectarian hatred in the name of religion are a cause for grave concern. Their funding should be treated as terror funding, and cracked down on. Iran, Saudi Arabia and Israel must cooperate on this as well.

## बिज़नेस स्टैंडर्ड

**Date: 31-05-17**

### निजी निवेश के लिए कैसे बने परिवेश

*देश की अर्थव्यवस्था की सबसे बड़ी समस्या यह है कि निजी निवेश नजर नहीं आ रहा है। इस संबंध में विस्तार से जानकारी दे रहे हैं*

देश की वृहद आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है। हमें एक के बाद एक संकटों का सामना करना पड़ रहा है। अर्थव्यवस्था पर इसका असर पड़ना लाजिमी है। निवेश से लेकर कॉर्पोरेट फाइनेंस और योजना निर्माण तक इसके कई रूप हैं। वित्त मंत्रालय के समक्ष सबसे अहम काम है राजकोषीय, वित्तीय और मौद्रिक संस्थानों पर काम करना ताकि वृहद आर्थिक स्थिरता कायम हो सके। हमें वित्त मंत्रालय में यह उद्देश्य नए सिरे से पैदा करना होगा और उसके इस प्रमुख काम के लिए क्षमता निर्माण करना होगा। किसी भी देश के विकास के मूल में निजी निवेश होता है। हमारी अर्थव्यवस्था की सबसे महत्वपूर्ण दिक्कत यह है कि निजी निवेश में कमी आ रही है। सीएमआईई कैपेक्स के डाटाबेस के आकलन के मुताबिक क्रियान्वयन योग्य निजी परियोजनाओं की लागत वर्ष 2011 में 53 लाख करोड़ रुपये थी जो वर्ष 2017 तक घटकर 42 लाख करोड़ रुपये हो गई। इस अवधि में जिस निजी निवेश की घोषणा की गई उसकी राशि में 43 लाख करोड़ रुपये से घटकर 26 लाख करोड़ रुपये हो गई। यह मूल्यांकन सांकेतिक है। 21 फीसदी और 40 फीसदी की इस गिरावट में अगर मुद्रास्फीति को शामिल कर लिया जाए तो यह 25 फीसदी तक और बिगड़ जाएगी। निजी व्यक्ति को स्पष्ट तौर पर परियोजनाओं में निवेश के जरिये लंबे समय तक काम करना होता है। इस दौरान अल्पावधि की कुर्बानी देना बहुत अहम प्रक्रिया है। इसके आधार पर ही संगठनात्मक पूंजी तैयार होती है। हर कंपनी को मुनाफा कमाने और संगठनात्मक क्षमता निर्माण के द्वंद्व का सामना करना होता है। संगठनात्मक क्षमता में निवेश करने से समान पूंजी और श्रम की मदद से काफी अच्छा उत्पादन हो सकता है। संभव है कि ऐसी सोच के चलते ही हाल के वर्षों में अल्पावधि को लेकर चाहत बढ़ी है। इसका असर

उत्पादन वृद्धि पर लाजिमी तौर पर पड़ता है। ऐसे में चूक कहां हुई? एक अहम तत्त्व जो गलत हुआ वह है वृहद अर्थव्यवस्था को लेकर ढेर सारी बात। बात करते हैं वर्ष 2000 और उसके बाद की। हमारी शुरुआत सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र की तेजी ध्वस्त होने के साथ हुई और उसके बाद केतन पारेख घोटाला सामने आ गया। इस बीच यूटीआई और आईएफएसआई जैसी फर्म ढह गईं। इसके बाद अमेरिका में आतंकी हमला हुआ और वैश्विक अनिश्चितता का दौर शुरू हो गया। इसके बाद वर्ष 2002 से 2008 के बीच तेजी का दौर रहा। भारतीय इतिहास में यह सबसे बड़ा कारोबारी विस्तार का दौर था। लेकिन इस बीच 17 मई 2004 को जब संप्रग की चुनावी जीत हुई तो हमें शेयर बाजार पर बहुत बुरा असर हुआ। उसके बाद लीमन संकट ने भारत को बुरी तरह प्रभावित किया। सन 2013 में वित्त मंत्रालय और आरबीआई ने रुपये का बचाव करने के लिए दरों में 400 आधार अंक का इजाफा किया। इसके चलते भाजपा को 2014 में आम चुनाव जीतने में मदद मिली। इसके बाद नोटबंदी के रूप में वृहद आर्थिक झटका लगा। वर्ष 2009 के बाद से हम लगातार एक बड़े बैंकिंग संकट को छिपाते आ रहे हैं। इस बीच एनएसईएल, सत्यम, और आंध्र प्रदेश में सूक्ष्म वित्त पर प्रतिबंध जैसे छोटे झटके लगते रहे। बीते 17 साल में मैंने 10 वृहद आर्थिक घटनाएं और तीन छोटी घटनाएं दर्ज कीं। यानी हर दो-ढाई साल में ऐसी एक घटना होती है। यह ठीक नहीं है। निजी निवेश करने वाले अल्पावधि और दीर्घावधि के बीच झूलते रहते हैं। यहां जोखिम दो रूप में सामने आता है। एक ओर यह सूक्ष्म आर्थिक जोखिम है यानी एक फर्म और एक उद्योग से जुड़ा जोखिम। वहीं दूसरा हिस्सा वृहद आर्थिक जोखिम का है: यहां जोखिम पूरी अर्थव्यवस्था से जुड़ा है। इस बीच हमारी आर्थिक हालत देख कर लोग और सजग हो जाते हैं।

कॉर्पोरेट फाइनेंस को इस बात को ध्यान में रखकर तैयारी करनी होगी। संकट के बार-बार दोहराव के बीच इक्विटी पूंजी ही सुरक्षित है लेकिन इससे पूंजी की लागत बढ़ती है। और कुछ परियोजनाएं अव्यवहार्य हो जाती हैं। वृहद आर्थिक स्थिरता ही आम घरों की बचत, परिसंपत्ति चयन, और योजनाएं तय करने में मदद करती है। ब्रिटेन में एक परिवार यह मान सकता है कि अगले 100 साल तक खुदरा महंगाई औसतन दो फीसदी रहेगी। एक भारतीय ऐसा नहीं मान सकता। आखिर हमें वृहद अस्थिरता से क्यों जूझते हैं? यह समस्या हमारी संस्थागत व्यवस्था में है जो राजकोषीय, वित्तीय और मौद्रिक नीति से जुड़े हैं। हमारा मौजूदा सांस्थानिक ढांचा उस वक्त में बना था जब हमारी जीडीपी 200 अरब डॉलर की थी और अर्थव्यवस्था बंद थी। अब देश बदल चुका है। अर्थव्यवस्था में खुलापन आया है और जीडीपी 10 गुना बढ़ चुका है। लेकिन सांस्थानिक ढांचा अब तक वही है। हमारी स्थिति एक ऐसे व्यक्ति की है जिसका शारीरिक विकास हो गया है लेकिन मानसिक नहीं। कुछ झटके बाहरी भी होते हैं। अगर हमारे पास बढिया संस्थान हों तो हम उनसे निपट सकते हैं।

राजकोषीय नीति में समझदारी बहुत अहम है। खासकर घाटे और ऋण को लेकर। ऋण के लिए भी बेहतर तरीके अपनाना आवश्यक है। वित्तीय नीति में वित्तीय कंपनियों के सूक्ष्म नियमन की आवश्यकता होती है। कमजोर वित्तीय कंपनियों को बंद करने के लिए रिजॉल्यूशन कॉर्पोरेशन, जोखिम के नियमन और पूंजी पर बेहतर नियंत्रण की आवश्यकता होती है। मौद्रिक नीति में आरबीआई की आवश्यकता है जिसका लक्ष्य है खुदरा महंगाई को 4 फीसदी के स्तर पर स्थिर करना। हमारा मौजूदा सांस्थानिक ढांचा इन मोर्चों पर विफल है। इन सुधारों के लिए बेहतर काम करने वाली वित्तीय एजेंसियों के समूह की आवश्यकता है। मसलन आरबीआई, सेबी या पीडीएमए (सार्वजनिक ऋण प्रबंधन एजेंसी) आदि। इनको वित्तीय मंत्रालय की मदद से नई क्षमताओं से लैस करना होगा। वित्त मंत्रालय को इस पूरी प्रक्रिया पर करीबी नजर रखनी होगी और दिन प्रतिदिन के हिसाब से रणनीतिक कदम उठाने होंगे तो इस काम को पूरा किया जा सके। वृहद स्थिरता के लिए संस्थान निर्माण आवश्यक है। यह वित्त मंत्रालय की जिम्मेदारी है। उसे पूरा सांस्थानिक परिदृश्य तैयार करना होगा और जरूरी बदलाव लाने होंगे। एक बार बदलाव पूरा होने के बाद वह इसे सुव्यवस्थित कर सकता है। आज वित्त मंत्रालय का मूल काम है राजकोषीय, वित्तीय और मौद्रिक नीति के लिए संस्थान तैयार करना। इसका क्रियान्वयन करने में राजनीतिक संघर्ष से लेकर मजबूत तकनीकी टीम तक कई बातें शामिल होंगी।

**अजय शाह (लेखक नैशनल इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक फाइनेंस ऐंड पॉलिसी में प्रोफेसर हैं। लेख में प्रस्तुत विचार निजी हैं।)**

**Date: 31-05-17**

## सही समय, सही कदम

भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (सेबी) ने पार्टिसिपेटरी नोट्स (पी-नोट) को लेकर जो ताजा प्रस्ताव तैयार किया है वह इस अस्पष्टतां उपाय को चरणबद्ध तरीके से समाप्त करने की नीति के अनुरूप ही है। डेरिवेटिव में खुली सट्टाबाजी (बिना कवर के बाजार पोजिशन लेना)के काम में पी-नोट के इस्तेमाल को गैर कानूनी करने का प्रस्ताव है। सेबी की इच्छा पी-नोट जारी करने वाले पर प्रति पी-नोट 1,000 डॉलर का शुल्क लगाने की है। ऐसा करने से इसके इस्तेमाल की लागत बढ़ जाएगी।

एक विदेशी पोर्टफोलियो निवेशक (एफपीआई) अपने किसी ग्राहक को पी-नोट जारी कर सकता है जो खुद अपने खाते में एफपीआई के रूप में पंजीकृत होने का बोज़ नहीं वहन करना चाहता। उम्मीद है कि एफपीआई ग्राहक को जानने (केवाईसी) के कड़े मानकों को पूरा करेंगे और पी-नोट जारी करने के पहले अपने ग्राहक के बारे में विस्तृत जानकारी दर्ज करेंगे। करीब एक दशक पहले यह उपाय बहुत लोकप्रिय था और देश की 50 फीसदी से अधिक एफपीआई परिसंपत्तियां पी-नोट के अधीन होती थीं। परंतु पी-नोट की प्रतिष्ठा खराब थी और माना जाता था कि इनका इस्तेमाल धनशोधन करने वाले और कारोबारी करते हैं जिनको अपनी पहचान छिपाने का मन होता है। बहरहाल समय बीतता गया और नियम सख्त होते गए ताकि इनका दुरुपयोग रोका जा सके। उदाहरण के लिए अनिवासी भारतीयों को अब पी-नोट का इस्तेमाल करने से रोक दिया गया है और कुल एफपीआई परिसंपत्ति का बसुशिकल छह फीसदी अब पी-नोट के रूप में धारित है। इतना कम प्रतिशत होने के बाद भी यह राशि 1.7 लाख करोड़ रुपये तक है। इस राशि में करीब 40,000 करोड़ रुपये यानी इसका 24 फीसदी उन पी-नोट के रूप में है जो डेरिवेटिव के विरुद्ध रखे गए हैं। ऐसे में शुल्क वसूल करने का प्रस्ताव मामूली अंतर पैदा करेगा। पी-नोट के ग्राहक प्रायः आठ अंकों वाले या उससे अधिक के पोर्टफोलियो (अमेरिकी डॉलर में) में कारोबार करते हैं। इसलिए एफपीआई आसानी से अतिरिक्त शुल्क दे देंगे। बहरहाल खुली सटोरिया गतिविधि पर रोक लगाने का प्रयास विचित्र है और पहली नजर में इसका क्रियान्वयन आसान नहीं लगता। जब एक एफपीआई एक पी-नोट धारक की जगह पर डेरिवेटिव पोजिशन लेता है तो उसे यह देखना होगा कि नोट धारक के पास उल्लिखित परिसंपत्ति है या नहीं। यानी अब बिना इसके खुली सटोरिया गतिविधि नहीं की जा सकती। अगर ऐसी कोई स्थिति है तो उसे दिसंबर 2020 तक समाप्त करना होगा।

अगर पी-नोट धारक के पास ऐसी उल्लिखित संपत्ति है तो एफपीआई को देखना होगा कि प्रस्तावित डेरिवेटिव पोजिशन में उस संपत्ति के बचाव की व्यवस्था है या नहीं। लेकिन व्यवहार में यह मामला बहुत जटिल और अनिश्चित है। यहां एक प्रश्न यह भी आता है कि आखिर नियामक को तब तक सटोरिया कारोबार को हतोत्साहित करने की क्या आवश्यकता होनी चाहिए या इस बात पर क्यों ध्यान देना चाहिए कि कोई लेनदेन सट्टाबाजी है या नहीं, जब तक कि कारोबार को कवर करने के लिए उपयुक्त मार्जिन जमा किया जा रहा है। सटोरिया कारोबारी कारोबार का आकार बढ़ाते हैं और लेनदेन की लागत कम करते हैं। ऐसे में इच्छा होने पर उसकी हेजिंग आसान होती है। बहरहाल अगर यह प्रस्ताव आगे बढ़ता है तो यह कुछ पी-नोट धारकों की बहुस्तरीय लेनदेन व्यवस्था में हस्तक्षेप होगा। माना जा रहा है कि इस स्थिति में ये नोट धारक ऐसी एफपीआई स्वीकृति के लिए आवेदन देंगे जो उन्हें डेरिवेटिव कारोबार में अबाध गति दे। इरादा स्पष्ट है और वित्तीय सेवा उद्योग ने खुद को ऐसे कदम के लिए तैयार कर लिया है। सेबी ने इसे व्यवस्थित तरीके से करने की व्यवस्था की है ताकि अचानक नकदी संकट न उत्पन्न हो। यह सराहनीय है। ऐसा करने से धनशोधन और पैसे को घुमाकर व्यवस्था में लाने की एक राह बंद होगी।

*Date: 30-05-17*

## Ban-wagon effect

### *Environment ministry's rules regarding cattle and buffaloes for slaughter will have adverse economic consequences*

The most intriguing part about the Union Environment Ministry's new rules banning sale and purchase of cattle and buffaloes for slaughter purposes in livestock markets across India is the seeming absence of any stakeholder consultations. Whether it is the meat, dairy and leather industries, farmer organisations or state governments responsible for regulating "markets and fairs" under Entry 28 of List-II of the Constitution — none apparently had the faintest idea about the rules while in the process of drafting. No less interesting is that the rules have been framed under the Prevention of Cruelty to Animals Act (PCAA). While the latter subject is covered under the Concurrent List, giving the Centre the power to make laws or rules, nowhere does the Act itself, however, talk about ending animal slaughter; what is sought to be curbed is only "unnecessary pain or suffering in the pre-slaughter stages as far as possible". It is natural to ask: How will disallowing trade of cattle destined for slaughter in markets ameliorate such pain?

Critics of the latest move, including Opposition-ruled state governments, allege that it amounts to a backdoor nationwide ban on cattle slaughter. The PCAA's provisions being invoked, in the most tenuous manner, would indeed appear to confirm this suspicion. Ministers in the Narendra Modi government have been at pains to emphasise that the new rules aim only at "regulating" animal markets. But if cattle intended for slaughter cannot be taken to markets at all, how can this be just "regulation"? The government's response has been that the idea is to allow only "healthy" milch and agricultural purpose animals to be bought and sold in markets. The spent cattle can go straight from the farm to the abattoir.

Ergo, there's no ban or restriction on slaughter. There are two problems to this argument. The first has to do with the very idea of a market, as a meeting place for buyers and sellers. Cattle markets are typically weekly affairs where, say, 500 farmers come and sell their animals to 50 suppliers to slaughterhouses. This is a more efficient system than the same buyers going to each individual seller's home; the farmer also benefits from multiple bidders, who are absent in a direct sourcing arrangement. Secondly, unlike in the West, there aren't separate categories of "beef cattle" and "dairy cattle" farmers in India. The farmer who rears buffaloes for milk sells the same animals for slaughter when they become unproductive. By killing the market for slaughter livestock, the government may end up destroying the market for dairy animals as well.

---

# राष्ट्रीय सहारा

**Date: 30-05-17**

## यूरोप की यात्रा

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी सोमवार से यूरोप की यात्रा पर हैं। फिलहाल वह जर्मनी में हैं। यहां से वे स्पेन, रूस और फ्रांस जाएंगे। प्रकटतः मोदी का ताजा दौरा कारोबारी किस्म की है। इसका मकसद मेक इन इंडिया के लिए समृद्ध यूरोप से ज्यादा से ज्यादा निवेश लाना है। लेकिन प्रधानमंत्री की रवानगी का मौजूदा वक्त और यूरोप की राजनीतिक-सैद्धांतिक व आर्थिक परिस्थितियां उनके दौरे को खास बना देती हैं। जर्मनी यूरोपीय संघ का अहम भागीदार है, ऐसे कि इस संगठन को जारी रखने का दारोमदार जैसे उसी पर टिका दिया गया है। फिर वहां चुनाव होने वाला है, जिसको संघ और जर्मनी के चांसलर एंजिला मार्केल की नीतियों पर जनादेश माना जा रहा है। दूसरी तरफ, मार्केल यूरोपीय संघ के साझा वजूद के लिए अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रंप पर अपनी निर्भरता कम करना चाहती है। भारत का आया हुआ समय-अर्थव्यवस्था की मजबूती और कारोबार में पेशेवराना लिहाज से-ही नहीं, बल्कि अपनी सैद्धांतिकी की वजह से पूरे यूरोप के लिए चीन से ज्यादा मुफीद बैठता है। ऐसे में मोदी की यात्रा के बेहतर परिणाम के आसार बढ़ जाते हैं। जर्मनी और फ्रांस भारत के विश्वस्त सामरिक साझेदार रहे हैं। इसके अलावा, वह परमाणु ऊर्जा सहयोग (खास कर फ्रांस) और अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी के निरंतर हस्तांतरण को पुख्ता करने पर मोदी का जोर रहेगा। जर्मनी और फ्रांस के साथ भारत की बातचीत नवउदारवादी या बाजारवादी व्यवस्था की निरंतरता की आास्ति में होगी। वहीं, आतंकवाद के खिलाफ अभियान भारत, रूस और फ्रांस का एक तरह से भुक्तभोगी जैसा सहोदर मसला है-आनुपातिक अंतर के बावजूद। यह मुद्दा अफगानिस्तान में रूस की एक दमदार उपस्थिति के चलते ज्यादा अहमियत पा जाता है। वैसे रूसी नेता पुतिन से मोदी की भेंट होती रहती है पर इस बार वे दोनों पहली बार सेंट्स पीटर्सबर्ग में मिलेंगे, जहां वर्ल्ड इकनॉमिक फोरम की बैठक चल रही होगी। दूसरे, यह भेंट ओबीओआर के साये में होगी। इसमें मोदी को भांपने का मौका होगा कि पुतिन चीन के कितने पास तक गए हैं। कारोबारी प्रकट एजेंडे से अलग जो बात है, वह यह कि संरक्षणवादी होने को उत्सुक नियंतण व्यवस्था में भारतीय अपेक्षाओं की निर्बाध पूर्ति कैसे संभव है!

---